Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 15, Issue No. 12, December-2018, ISSN 2230-7540

प्राचीन भारत में वर्ण व्यवस्था के आधार पर विस्तृत अध्ययन

Savita*

M.A.C.W Jhajjar Ad-Hok. Lecturer in History, Haryana

सार - ***वर्ण शब्द का प्रयोग रंग के अर्थ में होता था और प्रतीत होता है कि आर्य लोग गौर वर्ण के थे और मूलवासी लोग काले रंग के थे। सामाजिक वर्ग-विन्यास में रंग से परिचायक चिह्न का काम लिया गया, लेकिन रंगभेद दर्शी पश्चिमी लेखकों ने रंग की धारणा को बढ़ाचढ़ा कर प्रस्तुत किया है। वास्तव में समाज में वर्गों के सृजन का सबसे बड़ा कारण हुआ आर्यों की मूलवासियों पर विजय। आर्यों द्वारा जीते गए दास और दस्यु जनों के लोग दास और शूद्र हो गए। जीती गयी वस्तुओं में कबीले के सरदारों और पुरोहितों को अधिक हिस्सा मिलता था और वे सामान्य लोगों को वंचित करते हुए अधिकाधिक सम्पन्न होते गए, इससे कबीले में सामाजिक असमानता का सृजन हुआ। धीरे-धीरे कबायली समाज तीन वर्गों में बंट गया- योद्धा, पुरोहित और सामान्य लोग (प्रजा)। चैथा वर्ग, जो शूद्र कहलाता था, ऋग्वेद काल के अन्त में दिखाई पड़ता है, क्योंकि इसका सर्वप्रथम उल्लेख ऋग्वेद के दशम् मंडल में है, जो सबसे बाद में जोड़ा गया है। वर्ण शब्द का प्रयोग आजकल हम अपने दैनिक जीवन मे कर सकते है।***

----------X----------

प्रस्तावना

ऋग्वेद के प्रारम्भिक चरणों में वर्ण-व्यवस्था जैसी कोई संस्था नहीं थी। उस समय दो वर्ण थे- आर्य और आर्येत्तर (दास-दस्यु) प्रथम मण्डल में अगस्त ऋषि द्वारा दो वर्णों की कामना किये जाने का उल्लेख है। आगे चलकर यह भी कहा गया है कि इन्द्र ने दस्युओं का वध करके आर्य वर्ण की रक्षा की, और दास वर्ण को अन्धकार में रखा।3. यही आर्य वर्ण आगे चलकर तीन भागों में विभाजित हुआ- ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य। साथ ही दस्युओं-दासों अर्थात अनार्यों को शूद्र वर्ण के अन्तर्गत सम्मिलित किया गया। ऋग्वेद में एक स्थान पर कहा गया है कि इन्द्र ने दासों को आर्य वर्ण में परिवर्तित किया।ऋग्वेद के दशम मण्डल के 'पुरुषसूक्त''**5** में एक मात्र ऐसा सूक्त है जहाँ चतुर्वर्णों का उल्लेख होता है। उसमें कहा गया है ब्राह्मण परम पुरुष के मुख से, क्षत्रिय उसकी भुजाओं से, वैश्य उसकी जाँघों से तथा शूद्र उसके पैरों से उत्पन्न हुए। इस प्रकार इसमें चारों वर्णों के क्रम, उनकी दैवी उत्पत्ति तथा उनकी उच्चता-निम्नता भी प्रकट हैं।

वर्ण व्यवस्था

वैदिक काल के पूर्व युग में ही वर्णों का समाज एकत्रित होने लगा। आर्य और अनार्य (दास) के रूप में प्रधान प्रतिस्पर्धी वर्ग सामने आ चुके थे। दोनों वर्ग परस्पर विरोधी रूप में आगे बढ़े। उत्तर वैदिक काल तक आते-आते आर्य और अनार्य का विरोध और द्विवर्ण की समानता समाप्त सी हो गयी। इनके स्थान पर चातुर्वर्ण का उल्लेख प्रारम्भ हो गया। यद्यपि ऋग्वेद के दशम् मण्डल के पुरुषसूक्त में चारों वर्णों का उल्लेख अवश्य हुआ है, किन्तु उस मण्डल की प्राचीनता उतनी नहीं है जितनी ऋग्वेद के अन्य मण्डलों की है।

पूर्व वैदिक काल में ब्राह्मण, क्षत्रिय और विश् इन तीनों के उल्लेख मिलते हैं, यद्यपि इनके साथ भी वर्ण शब्द नहीं प्रयुक्त हुआ है, जो यह सांकेतिक करता है, कि अभी ये वर्ग भी निश्चित आधारों पर एक-दूसरे से अलग नहीं हो पाये थे, केवल अलग होने की प्रक्रिया में थे। चारों वर्णों का सर्वप्रथम एकत्र उल्लेख ऋग्वेद के पुरुषसूक्त में मिलता है किन्तु यहाँ भी उनके साथ वर्ण शब्द का प्रयोग नहीं मिलता है। यहाँ सम्पूर्ण मानव समाज की, कल्पना एक विराट पुरुषके रूप में की गयी है और यह कहा गया है कि ब्राह्मण उस विराट पुरुष का मुख है, भुजाएं क्षत्रिय हैं, उरु वैश्य है तथा उसके पैरों से

www.ignited.in

शूद्र उत्पन्न हुआ। आर्यों ने समाज के जिन विभिन्न समूहों अथवा वर्गों का निर्माण किया उनमें उनके गुण के साथ-साथ उनके प्रधान कर्म को भी महत्व दिया गया। इस प्रकार वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत विभिन्न वर्णों अथवा समूहों को उनके प्रधान गुण और कर्म के आधार पर विभाजित किया गया तथा उनके कर्मों को प्रबल रूप से व्यवस्थित किया गया। प्राचीन धर्मशास्त्रों में वर्णों की उत्पत्ति ईश्वरकृत एवं दैवी मानी गई।

इसे परम्परागत सिद्धान्त भी कहा गया। इस सिद्धान्त के अनुसार वर्णों की उत्पत्ति ईश्वरकृत है।। ऋग्वेद के दशम् मण्डल के पुरुषसूक्त में वर्ण सम्बन्धी वर्णों की उत्पत्ति विराट पुरुष से हुई। यह भारतीय साहित्य में चार वर्णों का प्रथम उल्लेख है और यहाँ भी शूद्र वर्ण का स्थान अन्य वर्णों की तुलना में निम्नतम है। इससे स्पष्ट होता है कि इस मंत्र में तीन उच्च वर्णों ब्राह्मण, राजन्य और वैश्य को जो विराट पुरुष के अभिन्न अंग बताये गये हैं, किन्तु शूद्र की उसके पैरों से उद्भूत माना गया है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि पुरुषसूक्त के संकलन कार्य के पहले ही शूद्र वर्ण आस्तित्व ग्रहण कर चुका था और समाज में उनकी निम्नतम स्थिति मान्य हो चुकी थी। पुरुषसूक्त का संकलन-समय अथर्ववेद के संकलन काल में निर्धारित किया गया है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि पूर्व वैदिक काल में चातुर्वण्र्य-व्यवस्था के स्थान पर मात्र त्रैवर्णिक व्यवस्था थी। चातुर्वण्र्य व्यवस्था का उल्लेख अवेस्ता में भी हुआ है। प्राचीन ईरानी समाज अथर्व (पुरोहित), रथेष्ठ (योद्धा), वास्त्रीय फ्शोयन्त (परिवार के मुखिया) तथा हुइती (श्रमिक) में विभाजित था। किन्तु अधिकांश विद्वान् यह मानते हैं कि ईरानी समाज का वर्ग-विभाजन उत्तरकालीन है, और उसका आधार भारतीय आर्यों की वर्णव्यवस्था है।

गुण का सिद्धान्त

वर्ण व्यवस्था के उद्भव में गुणों की भी अभिव्यक्ति मानी गयी है। मनुष्यअपने गुणों से महान होता है। प्रकृति में तीन प्रकार के गुण सत्व, रज और तम बताए गए हैं।यह कहा जा सकता है स्वयं ईश्वर ने ही वर्णों का उद्भव किया और उनकी स्थिति निर्धारित की। चातुर्वर्ण व्यवस्था का प्राचीनतम उल्लेख है। यहाँ सम्पूर्ण सामाजिक संगठन एक शरीर के रूप में कल्पित किया गया है, जिसके विभिन्न अंग समाज के विविध वर्गों का प्रतिनिधित्व करते हैं। ब्राह्मणों की उत्पत्ति मुँह (वाणी) का स्थान है। अर्थात् शिक्षा और विद्या प्रदान करना। क्षत्रियों को बाहु (भुजायें) शौर्य एवं शक्ति की प्रतीक हैं, अतः क्षत्रिय का कार्य हथियार ग्रहण करके मानव जाति की रक्षा करना है। वैश्य पुरुषों की जाँघ से उत्तपत्ति के कारण उनका प्रमुख कार्य समाज की आर्थिक अवस्था सुदृढ़ करना था। कृषि, पशुपालन और वाणिज्य से वे समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे।पैर शरीर का भारवाहक है। अतः शूद्र की उत्पत्ति समाज का भारवहन करने अर्थात अन्य वर्णों की सेवा करने के निमित्त हुई है। ऋग्वेद की वर्णविषयक अवधारण श्रम-विभाजन के सिद्धान्त पर आधारित है, जिसमें प्रत्येक वर्ण के कार्य का महत्व है। इस वर्ण-व्यवस्था को दैवी इसलिए कहा गया, कि इससे सम्बद्ध वर्ण ईश्वर के भय से अपने-अपने वर्ण के अन्तर्गत रहें तथा इस नियम को तोड़ने का प्रयत्न न करे।

वर्ण व्यवस्था के कर्म के प्रसंग में महाभारत में कहा गया है कि ब्राह्मणोंको उनके आचरणों के आधार पर ही ब्राह्मण कह सकते हैं, और यदि शूद्र सदाचारी हो तो उसे भी ब्राह्मणत्व प्राप्त हो जाता है। इसमें कर्म की महत्वा को प्रदान किया गया है जिससे व्यक्ति सामाजिक कर्तव्यों का निर्वहन करे। युधिष्ठिर ने मत व्यक्त किया है ‘‘वही ब्राह्मण है जिसमें सत्य, दया, क्षमा, सदाचार करुणा और त्याग के गुण विद्यमान हो। जिस शूद्र में ये गुण हों वह शूद्र नहीं है और जिस ब्राह्मण में गुण न हो वह ब्राह्मण नहीं है। वर्ण व्यवस्था में इस सिद्धान्त को गुण और कर्म का महत्व को अधिक महत्व देते हैं। बौद्ध साहित्य में भी वर्ण-व्यवस्था के सामाजिक-व्यवस्था पर प्रकाश पड़ता है। एक स्थान पर यह उल्लेख है कि दो व्यक्तियों के बीच यह विवाद हुआ कि मनुष्य जन्म से ब्राह्मण है या कर्म से। इस विवाद का निपटारा बुद्ध ने किया और यह मत व्यक्त किया कि कर्मप्रधान है। कर्म से ही व्यक्ति ब्राह्मण होता है।38 इससे पूर्णतः स्पष्ट है कि बुद्ध के मतानुसार मनुष्य की उत्पत्ति में कर्म ही प्रधान आधार था। स्वयं बुद्ध समाज-व्यवस्था को जन्म के आधार पर न मानकर कर्म के आधार पर मानते थे। बुद्ध का विचार कर्मप्रधान था। वे कर्म को श्रेष्ठ मानते थे। अन्तर्गत सत्व-रज और तम, सत्वगुण (निर्मलता) पवित्र जिसमें सुख और ज्ञानकी प्राप्ति होती है। तृष्णा ईष्र्या को उत्पन्न कर रजोगुण अज्ञान से उत्पन्न होकर व्यक्ति को मोहपाश में बांध लेता है। अतः सत्वगुण सुख, रजोगुण कर्म और तमोगुण अज्ञान का कारण है।40 गुणात्मक कर्मों के अभिव्यक्ति -फल के विषय में गीता में कहा गया है कि सुकर्म की सात्विकता सुख, ज्ञान और वैराग्य आदि निर्मल फल है, राजस कर्म का फल है दुःख और तामस का अज्ञान।

कर्म सिद्धान्त

वर्ण व्यवस्था में कर्म का बहुत योगदान रहा जिसमें वैदिक युग के शुरू में ही जो लोग विद्या, शिक्षा यज्ञ इत्यादि धार्मिक रूचि रखते थे, वे ब्राह्मण वर्ग कहलाये। इनका मुख्य कर्म अध्ययन, अध्यापन, याजन और तप था। जो वर्ग राज्य-

व्यवस्था में सहयोग देते थे और जिनका प्रधान कर्म देश की रक्षा करना था। वे क्षत्रिय वर्ग कहलाये। जिसका पशुपालन, कृषि, तथा व्यापार प्रधान कर्म था वह वैश्य कहलाये। तीनों वर्णों की सेवा करना शूद्र वर्ण का कर्तव्य कहा गया। इस प्रकार वर्णों के ये प्रधान कर्म थे जिससे समाज में चार वर्णों का निर्माण किया गया और कर्म को एक सामाजिक व्यवस्था प्रदान किया। ये तीनो गुण मनुष्य में एक साथ नहीं होते हैं। जब रजस और तमस दबते हैं तब सत्व जब सत्व और तमस निर्बल होते हैं तब रजस और सत्य रुकते हैं, तब तमस ऊपर उठता है। इन तीनो गुणों में सत् गुण ही सर्वोच्च है। तथा इनका अनुसरण करने वाला व्यक्ति मानवीय है। इसलिए सात्विक व्यक्ति उच्च पद प्राप्त करता है, राजसी मध्यम और तामसी अधम। जो व्यक्ति मान और अपमान में संयम है एवं मित्र और अमित्र के पक्ष में तटस्थ है, वह सम्पूर्ण संवृद्धि से रहित और कत्र्तापन के अभिमान से विमुक्त व्यक्ति गुणातीत कहा जाता है। मनुष्य कर्म का त्याग नहीं कर पाता। त्यागी वही होता है जो कर्म फल का त्याग करता है। इस तरह गुणातीत कर्म का त्याग करने वाला त्यागी है। त्याग का भी लक्षण सात्विक, राजस और तामस होता है।43 नियत कर्म के तीन प्रेरक तत्त्व माने गए हैं, ज्ञान, ज्ञेय और परिज्ञाता, जिनके संयोग से इसका निर्माण होता है।ज्ञान, कर्म, कत्र्ता, बुद्धि और सुख इन्हीं त्रिगुण भावों से उद्भूत है।

गुण, कर्म का चिन्तन

भगवद्गीता में भगवान कृष्ण ने वर्णों की उत्पत्ति के विषय में कहा है कि"मैंने गुण और कर्म के आधार पर चारों वर्णों की उत्पत्ति की है। गुण के अन्तर्गत सत्व-रज और तम, सत्वगुण (निर्मलता) पवित्र जिसमे सुख और ज्ञान की प्राप्ति होती है। तृष्णा ईष्र्या को उत्पन्न कर रजोगुण अज्ञान से उत्पन्न होकर व्यक्ति को मोहपाश में बांध लेता है। अतः सत्वगुण सुख, रजोगुण कर्म और तमोगुण अज्ञान का कारण है। गुणात्मक कर्मों के अभिव्यक्ति -फल के विषय में गीता में कहा गया है कि सुकर्म की सात्विकता सुख, ज्ञान और वैराग्य आदि निर्मल फल है, राजस कर्म का फल है दुःख और तामस का अज्ञान। ये तीनो गुण मनुष्य में एक साथ नहीं होते हैं। जब रजस और तमस दबते हैं तब सत्व जब सत्व और तमस निर्बल होते हैं तब रजस और सत्य रुकते हैं, तब तमस ऊपर उठता है। इन तीनो गुणों में सत् गुण ही सर्वोच्च है। तथा इनका अनुसरण करने वाला व्यक्ति मानवीय है। इसलिए सात्विक व्यक्ति उच्च पद प्राप्त करता है, राजसी मध्यम और तामसी अधम। जो व्यक्ति मान और अपमान में संयम है एवं मित्र और अमित्र के पक्ष में तटस्थ है, वह सम्पूर्ण संवृद्धि से रहित और कत्र्तापन के अभिमान से विमुक्त व्यक्ति गुणातीत कहा जाता है।42 मनुष्य कर्म का त्याग नहीं कर पाता। त्यागी वही होता है जो कर्म फल का त्याग करता है। इस तरह गुणातीत कर्म का त्याग करने वाला त्यागी है। त्याग का भी लक्षण सात्विक, राजस और तामस होता है।43 नियत कर्म के तीन प्रेरक तत्त्व माने गए हैं, ज्ञान, ज्ञेय और परिज्ञाता, जिनके संयोग से इसका निर्माण होता है।44 ज्ञान, कर्म, कत्र्ता, बुद्धि और सुखइन्हीं त्रिगुण भावों से उद्भूत है। सात्विक ज्ञान के अन्तर्गत विभिन्नता में एकता के भाव की अनुभूति होती है।

रंग सिद्धान्त

वर्ण का अर्थ रंग भी होता है। वर्ण शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के वृ×ा या 'वरी' धातु से हुई है, जिसका अर्थ-चुनना अथवा वरण करना। वर्ण का तात्पर्य है- अपने व्यवसाय से सम्बन्धित। ऋग्वेद में रंग के आधार पर मूलतः 'आर्यवर्ण' एवं दास वर्ण का विभाजन मिलता है। ऋग्वेद समाज के प्रारम्भिक चरण में वर्ण का प्रयोग रंग के अर्थ में हुआ है। ऊषा को अरुण वर्ण तथा रात्रि को कृष्ण वर्ण कहा गया है। ऋग्वेद46 में आठवें सूक्त में तीन वर्गों-'ब्रह्म' 'क्षत्र' तथा विश् की श्रीवृद्धि के लिए अश्विनों से प्रार्थना की गई है। वर्ण के दोनों वर्ग आर्य और अनार्य(दास) का वर्ण-अर्थ श्वेत (गौर) और कृष्ण (श्याम) रंग। अतः वर्ण का रंग तत्कालीन युग में बहुत अधिक व्यवहार में था। यास्क ने वर्णों 'वृणोते' कहकर वर्ण शब्द की व्युत्पत्ति (ढक लेने के अर्थ में) धातु से निष्पन्न की है।

पाणिनि ने धातु 'पाठान्तर्गत' वर्ण वर्णन इत्येके" और 'वर्ण प्रेरणे' कहकर वर्ण शब्द की सिद्धि वर्ण धातु से की है। ऋग्वेद में जो 'वर्ण' शब्द रंग के रूप में प्रयुक्त हुआ है और रात और दिन का रंग क्रमशः कृष्ण और अरुण बताया गया है। इसी प्रकार दूसरे स्थान पर प्रयुक्त 'द्यावावर्णम चरतः पद की व्याख्या में वर्ण का अर्थ रंग किया जा सकता है। काणे के अनुसार अनेक मंत्रों में वर्ण शब्द रंग अथवा प्रकाश के अर्थ में प्रयुक्त है। किन्तु सायण ने ऋग्वेद 9.104.4 और 105.4 में वर्ण का अर्थ रंग तथा 10.124.7 में वर्ण का अर्थ 'शुक्ल भास्वर रूपम्' किया है- रंगभेद के आधार पर वर्ण-व्यवस्था की उत्पत्ति मानने वाले विद्वानों ने वर्ण शब्द का एक मात्र अर्थ रंग किया है।

कालान्तर में वर्ण व्यवस्था पर इन वर्णों के रूप में उल्लेख होने लगा तो चारों वर्णों के लिए भिन्न-भिन्न रंग निश्चित किए गए और उनके सदस्यों को एक दूसरे से विशिष्टता दी जा सके।48 और रंगों के आधार पर 'आर्य' और 'अनार्य'

(दास) की भिन्नता ऋग्वेद के विभिन्न स्थलों पर वर्णित है।ऋग्वेद (2.12.4) में प्रयुक्त 'दास वर्ण' का अर्थ मैक्डोनल ने दास रंग और अनार्य रंग किया है। काणे ने भी उसका अर्थ 'दास रंग' किया है। साथ-साथ उनके आचार-विचार धर्म व्यवहार और शारीरिक लक्षणों की भिन्नता भी मिलता है। वर्णों के रंग के अर्थ में महाभारत में भी उल्लेख मिलता है।

वर्ण व्यवस्था कीउत्पत्ति के विषय में कहा गया है कि मनुष्य की त्वचा के विभिन्न रंग वर्णों के सम्बन्ध थे। ब्रह्मा ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की उत्पत्ति की जिनका रंग क्रमशः श्वेत, लोहित (लाल), पीत (पीला) और काला था। श्वेत रंग का परिचायक सत्वगुण था, लाल रंग का रजोगुण, पीले रंग का रजोगुण और तमोगुण तथा काले रंग का तमोगुण।50 वेदाभ्यास, तपश्चर्या, ज्ञान शुद्धि इन्द्रिय-निग्रह आदि आचरण सत्वगुण के थे जो ब्राह्मण के गुण थे। विषय भोग में आसक्त रजोगुण से सम्बन्धित कार्य क्षत्रिय के थे। वैश्यों में पीतयुक्त रजस और तमस दोनों गुण सामान्य रूप से थे।

वर्ण व्यवस्था

इस युग में तीन प्रकार के सूत्रों की रचना की गई थी। श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र और धर्मसूत्र। ये तीनों सूत्र कल्पसूत्र के अन्तर्गत आते हैं। यह कल्पसूत्र उपनिषदों के पश्चात् ब्राह्मण साहित्य का एक बहुत बड़ा भाग है। सूत्र साहित्य की विशेषता है कम से कम शब्दों के द्वारा अधिक से अधिक बात कह देना। इसके अन्तर्गत व्यवस्थाकारों ने समाज के समस्त धार्मिक एवं सामाजिक विधि-निषेधों को छोटे-छोटे सूत्रों में संगठित कर रखा है। जिसमें श्रौतसूत्रों में याज्ञिक क्रियाओं और विधि-विधानों का महत्वपूर्ण उल्लेख है। तथा गृह्यसूत्रों और धर्मसूत्रों में सामाजिक और धार्मिक तथा राजनीतिक आचार-विचार एवं विभिन्न कत्तव्यों का वर्णन है। उत्तरवैदिक काल में चातुर्वण व्यवस्था का जन्म हुआ। तथा सूत्रकाल में वर्ण-व्यवस्था सुदृढ़ हो गयी। वर्णों के उद्गम में जन्म का आधार अधिक माना गया और कर्म का कम। वर्ण व्यवस्था की स्थिति में जन्म के साथ-साथ आनुवंशिकता का अधिक महत्व दिया गया है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारों वर्णों के कार्यों का उल्लेख दर्शाया गया है। यह युग धार्मिक चेतना का युग था, एक और ब्राह्मण-विचारधाराओं के पोषण समाज को अपने विचारों में बोझिल कर रहे थे तो दूसरी ओर जैन एवं बौद्धधर्म के प्रवर्तक इसके विरोध में तत्पर थे। इसलिए ब्राह्मण एवं ब्राह्मणेतर ग्रन्थों पर सर्वथा निर्भर रहना उचित नहीं होगा।

ब्राह्मण

सूत्र युग में वर्ण-व्यवस्था का पुनः संगठन किया गया है। जैन एवं बौद्ध धर्मों के विरोध में वह पुनः जन्मज घोषित की गयी, 'ब्राह्मण' वर्ग के पुनर्गठन के विकास की रूप रेखा इस काल में निश्चित की जा चुकी थी। जैन और बौद्ध धर्म के उत्कर्ष के कारण वर्ण-व्यवस्था को जो आघात लगा उसे समुचित ढंग से पुनः संगठित किया गया और उनके विकास में जन्म को फिर आधार बनाया गया। ब्राह्मण की श्रेष्ठता का पुनः नियोजन किया गया। द्विज (ब्राह्मण) की व्याख्या करते हुए ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य के उपनयन-संस्कार का प्रतिपादन

किया गया। इस काल में ब्राह्मण अन्य वर्णों से श्रेष्ठतम माना जाने लगा था। वह कर से मुक्त था। जैन एवं बौद्ध धर्म के प्रबल विरोध के कारण ब्राह्मण वर्ण में जन्म लेने वाला व्यक्ति भले ही अपने कर्म से च्युत हो जाय फिर भी श्रेष्ठ है। दूसरीओर बौद्ध विचारकों ने ब्राह्मणों से पहले क्षत्रिय का उल्लेख कर ब्राह्मण को दूसरे स्थान पर कर दिया और इसके पीछे कर्म को अधिक महत्व दिया। सम्भवतः इसी प्रभाव के कारण ब्राह्मण विचारकों ने भी कर्म पर बल देना आरम्भ किया, जिसे हम जैन एवं बौद्ध विचारधारा का प्रभाव कह सकते हैं।

क्षत्रिय

क्षत्रिय शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में अनेक स्थलों पर मिलता है, क्षत्र का सामान्य अर्थ 'शौर्य' अथवा 'वीरता' 83 'क्षत्रिय' शब्द का प्रयोग देवताओं की उपाधि के रूप में हुआ है और राजा के रूप में भी।84 उस युग में 'क्षत्र' का अर्थ प्रायः 'शूरता' और 'वीरता' से लिया जाता था। आर्यों के तत्कालीन समाज में क्षत्रिय समूह के रूप में ऐसे शूर-वीरों का एक वर्ग बन गया था, जो यहाँ के मूल निवासियों से युद्ध करके उनके भू-क्षेत्रों पर आधिपत्य स्थापित करता था। ऐसे ही शौर्यवान लोग देवताओं और राजाओं की श्रेणी में सम्मिलित किए गए थे।85 'राजन्य' शब्द भी 'क्षत्रिय' वर्ग के लिए प्रयुक्त किया जाता था। ऋग्वेद के पुरुषसूक्त में 'राजन्य' शब्द का व्यवहार किया गया है।86 यद्यपि यह शब्द शेष ऋग्वेद में नहीं मिलता है।

धर्मसूत्रों का विचार है कि यद्यपि क्षत्रिय वर्ण के लोग शासक होते हैं, किन्तु वे ब्राह्मणों के शासक नहीं हो सकते।17 ब्राह्मणों के कर्तव्यों में वेदाध्ययन करना-कराना, यज्ञ करना-कराना, दान लेना-देना पुण्य है। ये ब्राह्मणों के विशेषाधिकार भी हैं। जैन मुनि जयघोष ने कहा है कि कुशल पुरुषों द्वारा ब्राह्मण कहा गया, अग्नि के समान पूज्य, प्रिय स्वजनों के

आने पर आसक्त और जाने पर दुःख न होने वाला, आर्यवचन का रमण करने वाला, राग, द्वेष भय से मुक्त। शिक्षा पर जीवन यापन करने वाला, गृह त्यागी तथा गृहस्थों में अनासक्त व्यक्ति ही ब्राह्मण है। इसी सन्दर्भ में यह भी कहा गया है कि ओम का जप करने वाला, कोई व्यक्ति ब्राह्मण नहीं हो सकता, ब्राह्मण के लिए ब्रह्मचर्य आवश्यक है। सभी वर्ण कर्म से ही निर्धारित होते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि जैन मुनि का वैचारिक दृष्टिकोण ब्राह्मणों के आडम्बरों का उसके द्वारा व्यक्त की गयी अपनी तथाकथित श्रेष्ठता पर आघात करना था। उत्तराध्ययनसूत्र में भी विद्या को ब्राह्मण की सम्पदा के रूप में स्वीकार किया गया है। जैन मुनि जयघोष ने कहा कि यज्ञवादी लोग स्वाध्याय और तपसे उसी प्रकार आच्छादित रहते हैं, जैसे राख में अग्नि।

वैश्य

'वैश्य' शब्द ऋग्वेद के पुरुषसूक्त में ही आया है, किन्तु 'विश्' शब्द कई बार प्रयुक्त हुआ है। 'विश्' का अर्थ है 'जन दल' कई स्थानों पर 'मानुषीविशः'या 'मानुषीणां विशाम्' प्रयोग आये हैं। ऋग्वेद (3/34/2) में आया है- 'इन्द्र क्षितीनामसि मानुषीणां विशां दैवीनामुत पूर्वयावा,' 'अर्थात' इन्द्र तुम मानवीय झुण्डों एवं दैवी झुण्डों के नेता हो।'' ऋग्वेद (8/63/7) के मन्त्र 'यत्या×चजन्यया विशेन्द्र घोषा असृक्षत में 'विश्' सम्पूर्ण आर्य जाति का द्योतक है। ऋग्वेद के (5/32/11) में इन्द्र की उपाधि है 'पा×चजन्य (पाँच जनों के प्रति अनुकूल) तथा ऋग्वेद के 9/66/20 में अग्नि की उपाधि है 'पा×चजन्यः पुरोहितः। कहीं-कहीं जन एवं 'विश' शब्दों गौतम धर्मसूत्र में व्यवस्था की गयी है कि सामाजिक व्यवस्था को चलाने के निमित्त ब्राह्मण का धन अग्राह्य होता है, इसलिए राजा नहीं ले सकता है। कुछ विचारकों के अनुसार कहीं से प्राप्त गुप्तधन को ब्राह्मण उसे स्वयं अपने पास रख सकता है, जबकि अन्य वर्ण के लोग उसे अपने पास नहीं रख सकते थे, और राजा छठा हिस्सा ही प्राप्तकत्र्ता को प्रदान करता था। साथ ही यह भी उल्लेख है यदि राजा भी गुप्त धन पा जाय तो उसका आधा हिस्सा वह ब्राह्मण में बाँट दे।ब्राह्मण सबका गुरु होता है। ब्राह्मण की अन्य वर्गों के ऊपर श्रेष्ठता स्थापित थी। ''दस वर्ष का ब्राह्मण सौ वर्ष के क्षत्रिय के लिए भी सम्माननीय है, वह क्षत्रिय के लिए पिता के समान है। इस काल में ब्राह्मण अन्य वर्णों से श्रेष्ठ माना जाने लगा। आचार सम्पन्न एवं विद्वान ब्राह्मण अवध्य अंदड्य, अबन्ध्य, अपरिवेद्य, अवहिष्कार्य, अपरिहार्य तथा कर आदि से मुक्त था। प्रशासन कार्य में 'पुरोहित' को विशेष महत्व दिया जाने लगा था।

गौतम धर्मसूत्र के अनुसार राजा का शासन ब्राह्मणों पर लागू नहीं था, वह अन्य तीन वर्णों का शासक माना जाता था। ब्राह्मण का मुख्य कार्य विद्याध्ययन, अध्यापन तथा यज्ञ-यजन, याजन इत्यादि था। विपरीत परिस्थितियों में शिक्षा में प्रवीण न होने पर वे अन्य वर्णों की वृत्ति को भी अपना सकते थे। समाज में केवल सदाचारी ब्राह्मण को ही विशेष महत्व और सम्मान प्राप्त था। मूर्ख जो अशिक्षित ब्राह्मण थे वे शूद्र-वृत्ति ग्रहण कर अपनी जीविका चलाते थे। बौधायन का कथन है कि उत्तरी भारत में अनेक ब्राह्मण सैनिक का कार्य करते थे। आपस्तम्ब ने ब्राह्मण के सैनिक कर्मअनुसरण का विरोध किया है, किन्तु अत्यन्त संकट पर ब्राह्मण के लिए उसकी अनुमति प्रदान कर दिया। इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि

शूद्र

शूद्र' विराट् पुरुष के पैरों से उत्पन्न हुआ है और शूद्र का स्थान चैथा था।आर्यों के दास होंगे। अतः आर्यों ने उन्हें अपने समुदाय में ग्रहणकर लिया था और शूद्र की संज्ञा दी। ऐसा उल्लेख मिलता है कि वर्ण व्यवस्था का विकास पुराहितों के प्रभाव में हुआ। हमारे काम का केवल एक प्रसंग ऐसा है जिसे व्हिटने के अनुसार अथर्ववेद के आरंभिक काल का कहा जा सकता है। इसमें ब्राह्मण, राजन्य और वैश्य का उल्लेख तो हुआ है,96 किंतु शूद्र को छोड़ दिया गया है। इससे स्पष्ट है कि अथर्ववेद काल के अंत में ही शूद्रों को समाज के एक वर्ग के रूप में चित्रित किया गया है। इसी अवधि में उनकी उत्पत्ति के संबंध में पुरुषसूक्त में उल्लिखित उक्ति का समावेश ऋग्वेद के दशम मंडल में किया गया होगा। ऐतरेय ब्राह्मण के अंबष्ठों का समरूप माना गया है।97 इस ब्राह्मण में एक अंवष्ठ राजा की चर्चा है। 98 यही बात शूद्र जाति पर लागू होती है। अथर्ववेद के आरंभिक भाग में शूद्रों के तीन उल्लेख की विवेचना की जा सकती है। व्हिटने का कथन है कि अथर्ववेद के प्रथमखंड (भाग 1-7) में आते हैं जो परम लोकमूलक है और सभी प्रकार से उस संहिता का अत्यंत अभिलाक्षणिक अंश है।99 ऋग्वेद में इसी तरह की अन्य ऋचाएँ भी आई है। जिसमें पुरोहित चाहता है कि वह अपने दुश्मन आर्यों और दासों या दस्युओं को परास्त करे। वैदिक ग्रंथों में आए हुए सामाजिक संबंधों के प्रत्यक्ष निर्देशों का सही अर्थ लगाने में ब्राह्मण टीकाकार इसलिए सफल नहीं हो सके कि उनका ध्यान सदा बाद में होने वाली घटनाओं की ओर लगा रहता था। ऋग्वेद में आर्य और दास शब्दों ऋग्वेद में केवल एक ही बार उल्लेख हुआ है, ऐसा प्रतीत होता है कि बहुत से इस व्यवस्था से व्यवस्थाकारों ने ब्राह्मणों को कृषि-कर्म करने की अनुमति प्रदान की उसी जगह पर नाना प्रकार

के यम-नियम भी लाद दिये गये। अब्राह्मण और अयोग्य व्यक्ति को दान देने से अच्छा है कि जन्मना ब्राह्मण तथा सभी वेदों पर अधिकार रखने वाले श्रोतिय को दान दिया जाय।3गौतम धर्मसूत्र के विचार से ब्राह्मण ब्राह्मण को ऋण लेने तथा देने की छूट है। गौतम धर्मसूत्र में ब्राह्मण को वैश्यधर्म अपनाने की सुविधा भी प्रदान की गयी थी। किन्तु सुगन्धित वस्तुएँ, पका भोजन, तिल, पटसन, क्षौम, मृग-चर्म, स्वच्छ एवं खमीर उठी हुए वस्तुएँ, प्रशंसापत्र, आदि नहीं बेंचना चाहिए। इसी प्रकार उसे भूमि, चावल, घोड़े, गाय, गाड़ी में चलने वाले बैल भी नहीं बेंचने चाहिए। बौधायन धर्मसूत्र का विचार है कि चावल एवं तेल बेंचने वाला अपने पितरों के प्राणों को बेंचता है।

सारांश

प्राराचीन भारत में वर्ण व्यवस्था - एक अनुशीलन (वैदिक काल से लेकेकर आठवीं सदी, ईर्. तक) भारत के सामाजिक इतिहास में वर्ण-व्यवस्था का स्थान महत्वपूर्ण है, जो वैदिक काल से लेकर आज तक निरन्तर प्रवहमान है। जिसमें कालान्तर में राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक आदि सभी अवस्थाओं का इसने अपनी वर्णगत व्यवस्था से किसी न किसी रूप में दिशा-निर्देशन किया। वर्ण के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति को अपने स्वाभाविक गुणों के अनुरूप स्थान मिलता है। वर्ण शब्द की व्युत्पत्ति 'वृवरणे या 'वरी' धातु से हुई है जिसका अर्थ- चुनना या वरण करना। संभवतः वर्ण से तात्पर्य 'वृत्ति' से है, किसी विशेष व्यवसाय के चुनने से। भारतीय साहित्य में 'वर्ण' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग ऋग्वेद में हुआ है, जो पूर्व वैदिक युग की समाज रचना के प्रारम्भिक स्वरूप को स्पष्ट करता है।

ऋग्वैदिक समाज के प्रारम्भिक चरण में वर्ण का प्रयोग रंग के अर्थ में हुआ है। उषा को अरुण वर्ण तथा रात्रि को कृष्ण वर्ण कहा गया है। ऋग्वेद के प्रारम्भिक चरणों में वर्ण-व्यवस्था जैसी कोई संस्था नहंी थी। उस समय दो वर्ण थे- आर्य और आर्येत्तर (दास-दस्यु) प्रथम मण्डल में अगस्त ऋषि द्वारा दो वर्णों की कामना किये जाने का उल्लेख है। ऋग्वेद के दशम् मण्डल के 'पुरुष सूक्त' में एक मात्र ऐसा सूक्त है जहाँ चतुर्वर्णों का उल्लेख होता है। यह परिकल्पना आदि पुरुष के चार अंगों से की गयी है। यहाँ सम्पूर्ण सामाजिक संगठन एक शरीर के रूप में कल्पित किया गया है। जिसका लाक्षणिक अर्थ लगाया गया है कि मनुष्य मात्र को शिक्षा देने (मुख) वाले ब्राह्मण, रक्षा करने वाले (बाहु) क्षत्रिय, भोजन या अन्न प्रदायक (निचला भाग अन्न ग्राहक) वैश्य तथा सभी की सेवा (पैर) वाले शूद्र हैं।

इस प्रकार इसमें चारों वर्णों के क्रम, उनकी दैवी उत्पत्ति तथा उनकी उच्चता-निम्नता भी प्रकट है। वैदिक काल के पूर्व युग में ही वर्णों का समाज एकत्रित होने लगा। आर्य और अनार्य (दास) के रूप में प्रधान प्रतिस्पर्धी वर्ग सामने आ चुके थे। तथादोनों वर्ग परस्पर विरोधी रूप में आगे बढ़े। यद्यपि ऋग्वेद के दशम् मण्डल के पुरुष सूक्त में चारों वर्णों का उल्लेख अवश्य हुआ है किन्तु उस मण्डल की प्राचीनता उतनी नहीं है जितनी ऋग्वेद के अन्य मण्डलों की है। चारों वर्णों का सर्वप्रथम एकत्र उल्लेख ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में मिलता है किन्तु यहाँ भी उनके साथ वर्ण शब्द का प्रयोग नहीं मिलता है। यहाँ सम्पूर्ण मानव समाज की, कल्पना एक विराट पुरुष के रूप में की गयी है और यह कहा गया है कि ब्राह्मण उस विराट पुरुष का मुख है, भुजाएं क्षत्रिय, उरु वैश्य तथा उसके पैरों से शूद्र उत्पन्न हुआ। आर्यों ने समाज के जिन विभिन्न समूहों अथवा वर्गों का निर्माण किया उनमें उनके गुण के साथ-साथ उनके प्रधान कर्म को भी महत्व दिया गया। इस प्रकार वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत विभिन्न वर्णों अथवा समूहों को उनके प्रधान गुण और कर्म के आधार पर विभाजित किया गया तथा उनके कर्मों को प्रबल रूप से व्यवस्थित किया गया। प्राचीन धर्मशास्त्रों में भी वर्णों की उत्पत्ति ईश्वरकृत एवं दैवी मानी गई। इसे परम्परागत सिद्धान्त भी कहा गया। इस सिद्धान्त के अनुसार वर्णों की उत्पत्ति ईश्वरकृत है। सहस्त्रशीर्षा पुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात। पुरुष एवेद सर्व यद्भूतं यच्चभव्यम्। यह सृष्टिकर्ता हजार सिर, हजार आँखों और हजार पैर वाला था, जो भूत और भविष्य दोनों था और जिससे सृष्टि की उत्पत्ति हुई थी।

उपसंहार

चातुर्वण्र्य व्यवस्था का उल्लेख अवेस्ता में भी हुआ था। प्राचीन ईरानी समाज अथर्व (पुरोहित), रथेष्ठ (योद्धा) वास्त्रीय फ्शोयन्त (परिवार के मुखिया) तथा हुइती (श्रमिक) में विभाजित था। किन्तु अधिकांश विद्वान यह मानते हैं कि ईरानी समाज का वर्ग विभाजन उत्तरकालीन है, और उनका आधार भारतीय आर्यों की वर्ण व्यवस्था है। ऋग्वेद की वर्ण विषयक अवधारणा श्रम-विभाजन के सिद्धान्त पर आधारित है, जिसमें प्रत्येक वर्ण के कार्य का महत्व है। इस वण्ज्ञ व्यवस्था को दैवी इसलिए कहा गया कि इससे सम्बद्ध वर्ण ईश्वर के भय से अपने-अपने वर्ग के अन्तर्गत रहें तथा इस नियम का उल्लंघन करने का प्रयत्न न करे। दैवी सिद्धान्त के रूप में वर्ण-व्यवस्था के उद्भव का वर्णन महाभारत में भी किया गया है। महाभारत में विराट पुरुष के स्थान पर ब्रह्म की कल्पना की गयी है, तथा उसके विविध अंगों से चारों वर्णों

की उत्पत्ति बताई गयी है। शान्ति पर्व के अन्तर्गत यह उल्लेख प्राप्त होता है कि "ब्रह्म के मुख से ब्राह्मण, भुजाओं (बाहु) से क्षत्रिय, उरु (जंघा) से वैश्य और तीनों वर्णों की सेवा के लिए पैर से शूद्र की रचना हुई। भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण का कथन है कि चारों वर्णों की सृष्टि मैंने गुण और कर्म के आधार पर की है तथा मैं उसका कत्र्ता विनाशक हूँ। और इसी प्रकार मनुस्मृति तथा पुराण में भी वर्ण-व्यवस्था की दैवी उत्पत्ति के सिद्धान्त मिलते हैं। मनु के अनुसार ब्रह्मा ने लोकवृद्धि के लिए मुख, बाहु, उरु तथा पैर से क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की सृष्टि की। वर्ण व्यवस्था में कर्म का बहुत योगदान रहा जिसमें वैदिक युग के शुरू में ही जो लोग शिक्षा, यज्ञ, इत्यादि धार्मिक रूचि रखते थे, वे ब्राह्मण वर्ग कहलाये। इनका मुख्य कर्म अध्ययन, अध्यापन, याजन और तप था। जो वर्ग राज्य व्यवस्था में सहयोग देते थे और जिनका प्रधान कर्म देश की रक्षा करना था। वे क्षत्रिय वर्ग कहलाये। जिसका पशुपालन, कृषि तथा व्यापार प्रधान कर्म था वह वैश्य कहलाये। तीनों वर्णों की सेवा करना शूद्र वर्ण का कत्र्तव्य कहा गया। इस प्रकार वर्णों के ये प्रधान कर्म थे जिससे समाज में चार वर्णों का निर्माण किया गया और कर्म को एक सामाजिक व्यवस्था प्रदान किया। वर्ण का अर्थ रंग भी होता है।

सन्दर्भ सूची

1. त्सिमर ने इस मत का प्रतिवाद किया है कि ऋग्वेद का सृजन ऐसे समाज में हुआ था जो वर्ण-व्यवस्था से परिचित था। वैदिक इण्डेक्स, पृ. 275 (अनु.)
2. उभौ वर्णावृषिरुग्रः पुपोष। ऋग्वेद 1/17/96
3. ऋग्वेद, 3/34/9, यो दासं वर्णमधरं गुहय कः वही, 2/12/4
4. ऋग्वेद, 6/22/10
5. ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः। ऊरूतदस्य यद्वेश्यः पद्भयां शूद्रोऽजायत्।।
6. अथर्ववेद 3,5,7: शतपथ ब्राह्मण 55.49
7. ऋग्वेद 10.9.12
8. वही, 18.30,32
9. ऋग्वेद, 8.35, 16-18
10. ऋग्वेद, 1.73.7
11. घुर्ये कास्ट क्लावस एंड आकुपेशन, पृ. 40
12. वही, pp. 4-9
13. ऋग्वेद, 1.104.2, pp. 349, "देवासो मन्युं दासस्य श्चमन्ते न आवक्षन्त्सुविताय वर्णम्।
14. वही 9.71.2: 1090.2.

Corresponding Author

Savita*

M.A.C.W Jhajjar Ad-Hok. Lecturer in History, Haryana

mahipalboora12880@gmail.com